इकाई 1 वास्तुशास्त्र की परिभाषा एवं परिचय

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 वास्तुशास्त्र की परिभाषा

1.2.1 वास्तु विमर्श क्रम

1.2.2 वास्तुपुरुष की उत्पत्ति

1.2.3 वास्तुपुरुष का स्वरूप

1.3 वास्तु परिचय

1.3.1 वास्तु भेद

1.3.2 गृह प्रयोजन

1.3.3 परिसरीय वातावरण

1.3.4 परम्परागत तथा आधुनिक

1.3.5 विचारणीय बिन्दु

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 उपयोगी पुस्तकें

1.7 बोध प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप:

- वास्तुशास्त्र क्या है एवं मानव जीवन पर इसका क्या प्रभाव होगा इससे परिचित होंगे।
- वास्तु पुरुष की उत्पत्ति एवं स्वरूप को बतायेंगे।
- वास्तु भेद एवं इसका प्रयोजन क्या है इससे परिचित होंगे।
- वास्तु से सम्बन्धित परम्परागत त्तथा आधुनिक विचारधाराओं को भी बतायेंगे।
- परिसरीय वातावरण के अनुसार बने हुए गृह पर सुप्रभावों अथवा कुप्रभावों को वास्तुशास्त्र के अनुसार बताने में सफल होंगे।

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई संस्कृत विभाग , मानविकी विद्यापीठ , इन्दिरा गांधी रास्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में संचालित वास्तुशास्त्र में स्नातकोत्तर डिप्लोमा कार्यक्रम के अन्तर्गत वास्तुशास्त्र के स्वरूप एवं इतिहास नामक प्रथम पाठ्य क्रम की खण्ड एक “वास्तुशास्त्र का स्वरूप “ नामक उपशीर्षक के अन्तर्गत यह पहली इकाई है इस इकाई का नाम है “वास्तुशास्त्र की परिभाषा एवं परिचय “ इस विषय को इस प्रकार सामान्य भाषा में कह सकते हैं कि वास्तु

शब्द के दो अर्थ है पहला अर्थ- वह जगह जहाँ लोग रहते हैं। अर्थात् वे सभी स्थान, जहाँ मानव निवास या कार्य करता है। दूसरा अर्थ – वस्तुओं का अध्ययन भी वास्तुशास्त्र कहलाता है , वेद ऋचाओं में ''वास्तु'' को गृह निर्माण के योग्य उपयुक्त भूमि के रूप में परिभाषित किया गया है। (समरांगणसूत्रधार) के अनुसार (वास्तु) शब्द ''वसु '' या पृथ्वी से उत्पन्न है। पृथ्वी को मूलभूत (वास्तु) माना गया है और वे सभी रचनाएँ जो पृथ्वी पर स्थित है उनको भी (वास्तु) कहा जाता है। चूँकि वास्तुशास्त्र का उद्भव ऋग्वेद , बौद्ध साहित्य, स्कन्द पुराण, नारद पुराण आदि ग्रन्थों में देखा जा सकता है। नकारात्मक वास्तु के प्रभाव से आर्थिक परेशनियाँ, व्यापारिक घाटा, ऋण सम्बन्धित समस्या ,निराशा जनित जीवन , निरन्तर सफलताओं से समस्या, परिश्रम का फल न मिलना,स्वास्थ्य सम्बन्धित समस्या , रोग का अधिक समय तक ठहरना, दुर्घटनाओं का होना ,पारिवारिक झगडा, तलाक का माहौल , नकारात्मक स्थिति, मानसिक तनाव ,अवसाद या डिप्रेशन ,अनिद्रा ,घबराहट , अनिर्णय की स्थिति, किसी प्रकार के अपराध का शिकार होना, परिवार के किसी सदस्य में किसी प्रकार की आपराधिक प्रवृति उत्पन्न होना ,संघर्षपूर्ण जीवन इत्यादि समस्या आती है। परन्तु सकारात्मक वास्तु के लाभ भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है जैसे – वित्तीय लाभ ,व्यापर में मुनाफा ,आर्थिक सम्पन्नता, आकस्मिक धन प्राप्ति ,अप्रत्याशित सम्पत्ति अर्जन ,प्रसिद्धि और सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि, अच्छा स्वास्थ्य ,सुरक्षित एवं लाभदायक यात्रायें , सौहार्दपूर्ण पारिवारिक माहौल, बच्चों के कैरियर के लिए बेहद लाभदायक , रचनात्मक विचारों और नए लाभदायक अवसरों का श्रृजन ,शांतिपूर्ण जीवन इत्यादि फल प्राप्त होता है। दिशाओं के अनुसार यदि बात करें तो घर के पूर्व , उतर की दिशाएँ एवं ब्रह्म स्थान , अर्थात् घर के बीचो-बीच के स्थान को हमेशा हल्का खाली –खाली रखें। वहीं दूसरी तरफ बात करें तो दक्षिण दिशा में भारी-भरकम ढाचें का निर्माण किया जा सकता है या फिर आप दक्षिण दिशा में कोई भारी वस्तु भी रख सकते हैं, ऐसा करना शुभ माना जाता है और घर की सकारात्मकता भी बनी रहती है इस प्रकार इस पाठ के अध्ययन से पाठकगण अधिक ज्ञानार्जन करके वास्तुशास्त्र के बारे समाज को अवगत करायेंगे तथा वास्तु जनित दोषों से छुटकारा दिलायेंगे।

1.2 वास्तु की परिभाषा

वस् निवासे धातु से वास्तु शब्द की सिद्धि हुई है। इसका आशय यह है कि मानव द्वारा निर्मित भवन वह कला है जिसके द्वारा मनुष्य प्राकृतिक आपदाओं एवं उपद्रवों से छुटकारा प्राप्त करता है। साथ ही वास्तुशास्त्र वह ज्ञान है जो भू खण्ड पर भवन निर्माण से लेकर उसमें प्रयोग होने वाले सभी वस्तुओं के बारे में मार्ग दर्शन करता है अर्थात् इससे सिद्ध होता है की घर निर्माण के भूमि को ही वास्तु कहते हैं। क्योंकि वास्तुशास्त्र के सिद्धान्त प्रकृति में सन्तुलन बनाए रखने के लिए है, प्रकृति में विविध बल उपस्थित है जिसमें जल ,पृथ्वी ,वायु ,अग्नि और आकाश सामिल है। इसके बीच परस्पर क्रिया होती है जिसका ब्यापक प्रभाव पृथ्वी पर निवास करने वाले प्राणी पर पड़ती है वास्तु ज्योतिष के अनुसार भी यही मत है। इसके सभी सिद्धान्त पूर्णतया वैज्ञानिक है ,और उनका एक मात्र उदेश्य मानव मात्र का कल्याण निहित है मनुष्य मात्र का सुगमता से एवं शीघ्रता से कल्याण कैसे हो – इस बात का जितना गम्भीर विचार हिन्दू संस्कृति एवं वास्तुशास्त्र में किया गया है , उतना अन्यत्र नहीं मिलता है।

चूँकि जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मनुष्य जिन –जिन वस्तुओं एवं व्यक्तिओं के सम्पर्क में आता है और जो –जो क्रियाएं करता है उन सबको हमारे दूरदर्शी ऋषि –मुनियों ने बहुत ही वैज्ञानिक

प्रक्रिया से मर्यादित एवं सुसंस्कृत किया है। इतना ही नहीं मनुष्य अपने निवास के लिए भवन –निर्माण करता है तो उसको भी वास्तुशास्त्र के द्वारा मर्यादित किया गया है।

भारतीय वास्तु विद्या का जन्म वेदांग षट्क (विशेषतः ज्योतिष एवं कल्प)से हुआ है।वस्तुतः भारतीय वास्तु कला का आश्रय धर्म रहा है अतः धार्मिक संस्कारों, यज्ञों एवं पूजाओं के सम्बन्ध में आवश्यक भूमि चयन ,भू –संस्कार .भूमि के नाम और उन्मान (नाप – जोख)एवं वेदी –रचना आदि –आदि आवस्यकीय अंगों के सम्बन्ध में जो निर्देश तथा विवरण सूत्र ग्रन्थों में मिलते है वे ही कालान्तर में वास्तु –विद्या के सूत्रपात करने में सहायक हुए।हमारे देश के प्राचीन परम्परा में जिन –जिन विद्याओं का एक साथ उल्लेख हुआ है उनमे वास्तु विद्या का समुल्लेख नहीं जान पड़ता है।अतः ये नहीं कहा जा सकता है की वास्तु-विद्या विद्या-स्थान को ही नहीं प्राप्त थी।आवश्यकता अविष्कारों की जननी कही गई है।और भवन सम्बन्धी आवश्यकता (निवास) मानवता एवं मानव साथ –साथ सनातन से सर्वत्र रही है।ऋग्वेद में ही वास्तु सम्बन्धी बहुत सकेत है जिनसे तत्कालीन वास्तु –विद्या एवं वास्तु –कला का सुदृढ अनुमान किया जा सकता है। वेदों से संगृहित शास्त्रों में से "ज्योतिष शास्त्र " एक है। इसे "वेदों " का नेत्र भी कहते है। एवं वास्तुशास्त्र इसी का एक अंग है यह शास्त्र मंगलमय एवं भवन आदि निर्माण का आधार है , यह इस सम्पूर्ण मानव जीवन के लिए लाभदायक शास्त्र है, इसे प्रगति दायक निर्माण भी कह सकते हैं। ये कल्पनाओ के बजाय अनुभव को प्रधानता देनेवाला एक अपूर्व शास्त्र है। इस शास्त्र को सृष्टी वैचित्र्य एवं मानव कल्याण के बीच की कड़ी भी माना जा सकता है क्योंकि दिशा मानव की दशा को बदल सकती है।

"देश: पुरम् निवासश्च सभा वेश्माऽऽसनानि च।
यद् यत्तदीशमन्यत्वं ततच्छ्रेयस्करं मतम्" ॥(वास्तुसारसंग्रह श्लोक संख्या 2)

मनुष्य की सुख –सुविधा हेतु देश-पुर –ग्राम निवास व आसन (शयन यान उपवेशन) ये सभी समान रूप में अपेक्षित है ,अर्थात्त सबकी अनुकूलता होने पर शुभ और प्रतिकूल लक्षणयुक्त होने पर अशान्ति का वातावरण बना रहता है। इस श्लोक के अनुसार शुभाशुभ फल प्रकाशक वास्तुशास्त्र से भिन्न कोई उपाय न होने से लोकानुक्म्पया ब्रह्म देव ने वास्तु विद्या का विधान बनाया। सृष्टि के आरम्भ में आवास इत्यादि व्यवस्था हेतु जल – स्थल –वन –उद्यान , ऊँच-नीच भूभाग को समतल करने के लिए तत्पर पृथु के भय से भयभित भू गाय का रूप धारण करने वाली निमिलिताक्षी निखिल देवों के साथ जाकर महाराज सृष्टिकर्ता पितामह से अपना दुःख निवेदन की ।भगवन् मैं अत्यन्त विस्तृत तेज वाले महाराज पृथु से पीड़ित होकर आपके शरण में आई हूँ. मेरी रक्षा करें।

भू के निवेदन के बाद श्रीपितामह ने महाराज पृथु से कहा कि हे पृथु - पृथ्वी के अनुकूलता से ही तुम्हारे निवास इत्यादि निष्पत्ति –सम्बन्धित प्रयोजन , त्रिदशाचार्य श्रीविश्वकर्मा के सहयोग से सिद्ध होंगे। अतः तुम इसकी भली-भांति रक्षा करो।तत्पश्चात वास्तु का परिचय कराते हुए प्रवास वसु के पुत्र और बृहस्पति के भगिनेय यह विश्वकर्मा देव दनुज –मानव प्रभृति प्राणियों के निवास- सुखासन –शयन –आसन आदि की पूरी तरह व्यवस्था किए

वर्तमान समय में आवास एवं भूमि के प्रकार देव अथवा मनुष्य जहाँ –जहाँ निवास करते हैं उसी को विज्ञजन वास्तु कहते है।उन निवास स्थलों का वर्णन इस प्रकार है , भूमि –प्रासाद –देवालय –यान एवं शयन , इसमें प्रधान वास्तु भूमि ही है क्योंकि शेष सभी इसी से उत्पन्न होते

है, दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रासाद वास्तु आदि भूमि से उत्पन्न होने एवं उस पर आश्रित होने के कारण वास्तु ही है ,इसी कारण आचार्यों ने इन्हें वास्तु की संज्ञा प्रदान की है , इसलिए भवन प्रासाद आदि के निर्माण के लिए भूमि की परीक्षा वर्ण – रंग –गंध –रस –स्वाद आकृति – दिशा शब्द एवं स्पर्स के द्वारा करनी चाहिए। परीक्षा के बाद ही निर्माण कार्य की आवश्यकता के अनुसार (वास्तु) भूमि ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार आप को वास्तु का आशय भूमि ही जानना चाहिए और इसे ही वास्तु समझना चाहिए।

1.2.1 वास्तु विमर्श क्रम

वास्तु विमर्श क्रम में सर्व प्रथम भूमि एवं भवनों के प्रकार का ज्ञान , उसके बाद भूमि के गुण दोषों की परीक्षा। उपयुक्त भूमि के चयन के बाद उसका मापन एवं शंकु की स्थापना की जाती है।

नियम नं. 1 सर्व प्रथम भूमि का परीक्षण करना चाहिए –इसके लिए जिस भूखण्ड पर घर बनाना है उस भूखण्ड पर एक हाथ गहरा खड्डा खोदें और उसमें से निकली हुई मिट्टी को पुनः उसी गड्ढे में भर कर देखें।

1. यदि मिट्टी कम पड़ती है तो उस भूमि पर निवास करने वाले ब्यक्ति के लिए अशुभ कारक समझना चाहिए।
2. यही मिट्टी समतल या बराबर हों तो समान्य फल समझना चाहिए अर्थात् न हानि और न लाभ।
3. यदि उस मिट्टी से खात भरने के बाद भी मिट्टी बच जाय तो वह भूमि बहुत ही शुभ फल को देने वाली होती है उस वास्तु पर निवास करना बहुत ही शुभकर समझना चाहिए।

नियम नं. 2 इसी प्रकार एक अन्य युक्ति के साथ भी भूमि परिक्षण किया जाता है इसके लिए उस खात को पानी से भरा जाता है फिर सौ कदम दूर उत्तर दिशा में जाकर लौट कर देखें की एक चौथाई पानी घटता है तो वह भूमि मध्यम फल दायक होती है , तथा खात में आधे से कम पानी शेष रहने पर उस भूमि को निवास के लिए अधम कोटि का समझना चाहिए एवं विल्कुल पानी कम न हो तो वह भूमि वृद्धिकारक एवं निवास के लिए सर्वोत्तम होती है।

यथा - खातं भूमिपरिक्षणे करमितं तत् पुरयेत्तन्मृदा
हीने हिनफलं समे समफलं लाभो रजोवर्धने।
तत्त्क्रित्वा जलपूर्णमाशतपदं गत्वा परिक्ष्यं पुनः
पदोनेऽर्धविहीनकेऽथ निभृते मध्याधमेष्टावनी ॥

(शिल्पदीपकमं श्लोक संख्या 26)

अब भूमि के ढलान के बारे में भी जानना आवश्यक है चूँकि जिस भूमि पर भवन निर्माण करना हो वहां यदि पानी का बहाव पूर्व –उत्तर –ईशान दिशा के तरफ हो तो उस भूमि पर निवास करना उत्तम बताया गया है। इस बात को आप चक्र के माध्यम से समझ सकते है कि जल का बहाव किस दिशा के तरफ हों तो क्या फल होगा।

॥जल प्रवाह एवं भूमि ढलान चक्र ॥

क्रम	दिशा	फल	क्रम	दिशा	फल
1	पूर्व, ईशान, उत्तर प्लव	सुखद	4	नैऋत्य	चोर भय
2	आग्नेय	अग्निभय	5	वायव्य कोण	धान्य चोरी
3	दक्षिण	मृत्युभय	6	पश्चिम	शोक प्रदायक

इस प्रकार जिस भूमि पर निवास करना हो या भवन निर्माण करना हो वहां पर ब्राह्मण आदि वर्णों के अनुसार खूंटी रोपण इत्यादि करके भूमि के भीतर शल्य (हड्डी) इत्यादि का पता लगाया जाता है ।जिस भूमि में शल्य हों अथवा भूमि में दरार अथवा छारीय भूमि , चूहे व सापों के बिल वाली एवं खोदने पर हड्डी इत्यादि निकले तो इस भूमि पर मकान नहीं बनाना चाहिए।

शास्त्रों में उल्लिखित विधि के अनुसार शल्य शोधन करना चाहिए। शुभ दिन ,शुभ नक्षत्र ,तारा एवं चन्द्र जिस दिन अनुकूल हों , ऐसे दिन शुभ लग्न एवं शुभ मुहूर्त में शल्योद्वार करना चाहिए।

भूमि के अन्दर शल्य (हड्डी) ज्ञान करने की विधि - जिस भूमि पर घर या मन्दिर निर्माण करना हो उस भूमि को नव भाग करें। इन नव भागों में पूर्व से प्रारम्भ करके ब , क , च , त , ए , ह , स ,प , ज लिखें। फिर नीचे लिखे हुए प्रारूप के अनुसार यन्त्र बनावे। कुमारी कन्या को तिलक लगाकर श्रीफल देकर पूर्व के तरफ मुख करके बैठावें।

ईशान – प	पूर्व – ब	आग्नेय – क
उत्तर - स	मध्य – ज	दक्षिण - च
वायव्य –ह	पश्चिम –ए	नैऋत्य - त

इसके बाद “ ॐ ह्रीं श्रीं ऐ नमो वाग्वादिनी मम प्रश्ने अवतर –अवतर “ इस मंत्र से खड़िया (सफेद चाक) से लिखकर 108 बार पढ़ कर कुमारी कन्या के हाथ में दें तथा कोई भी प्रश्नाक्षर कन्या से लिखवाए। लिखे अक्षर को कोष्टक से मिलान करें। यदि मिल जाय तो उस भाग में शल्य (हड्डी) समझना चाहिए।

प्रश्न अक्षर से शल्य मिलने का संकेत

ब आये तो पूर्व दिशा में डेढ़ हाथ के नीचे मनुष्य की हड्डी इसका फल निर्माता की मृत्यु

क आग्नेय में दो हाथ के नीचे गधे की हड्डी राजभय

च दक्षिण में कमर जितना गहरा मनुष्य की हड्डी निर्माता की मृत्यु

त नैऋत्य में डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते की हड्डी बालकों को हानि (सन्तान सुख का अभाव)

ए पश्चिम में दो हाथ नीचे बच्चे की हड्डी स्वामी का परदेश वास

ह वायव्य में तीन हाथ नीचे पक्षी की हड्डी मित्रों से मनमुटाव

स उत्तर में कमर जितना गहरा विप्र की हड्डी स्वामी का नाश

प ईशान में डेढ़ हाथ नीचे	गाय की हड्डी	स्वामी का धन नाश
ज मध्य में छाती जितना गहरा	कपाल,केश ,अतिसार	स्वामी की मृत्यु

भूमि शुद्ध करना सर्व प्रथम भूमि को झाड़ना चाहिए गाय के गोबर इत्यादि से अभिसिंचित करके गोमूत्र गंगाजल से, उसके बाद उपर की कुछ मिट्टी को खोद कर हटाना चहिए और एक दिन –रात अर्थात् 24 घंटा गाय को वहां ठहराना चाहिए इन पांच विधाओ से भूमि की शुद्धि होती है। यथा –

सम्मार्जनोपञ्चजनेन सेकेनोल्लेखनेन च।
गवां च परिवासेन भूमि; शुद्धयति पञ्चभि ; ॥ (मनुस्मृति 5 ।124)

1. भूमि के भीतर अगर यदि गाय का शल्य (हड्डी) हो तो राज भय ,मनुष्य का शल्य हो तो सन्तान का नाश , बकरे का शल्य हो तो अग्नि से भय , घोड़ा का शल्य हो तो रोग , गधे या ऊँट का शल्य हो तो हानि , कुत्ते का शल्य हो तो कलह तथा नाश होता है। यदि भूमि में एक पुरुष नाप के नीचे शल्य हो तो उसका दोष नहीं लगता। इसलिए यदि सम्पूर्ण भू खण्ड की मिट्टी एक पुरुष तक खोदकर फेंक दिया जाय और उसकी जगह दूसरी नयी मिट्टी छानकर भर दी जय तो वह भूमि मकान बनाने के लिए श्रेष्ठ होती है। (यहां पर मनुष्य के शिर से लेकर पैर तक नापें यह एक पुरुष का नाप समझना चाहिए। बारह अंगुल का एक बित्ता होता है और दस बित्ते का (120 अंगुल) का एक पुरुष का प्रमाण होता है ऐसा जानना चाहिए।

अब भूमि के प्लव के बारे में जानना आवश्यक है क्योंकि भूमि का झुकाव अगर यदि पूर्व ,उत्तर और ईशान दिशा में नीची भूमि हो तो वह भूमि सब मनुष्यों के लिए अत्यन्त वृद्धिकारक होती है। अन्य दिशाओं में नीची भूमि सबके लिए हानिकारक होती है। अब इस बात को विस्तार से समझते है –

नियम 1 . पूर्व में ऊँची भूमि पुत्र और धन का नाश करने वाली होती है , अग्नेय में ऊँची भूमि धन देने वाली होती है , दक्षिण में ऊँची भूमि सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली तथा आरोग्यता प्रदान करने वाली होती है।नैऋत्य में ऊँची भूमि धनदायक है , पश्चिम में ऊँची भूमि पुत्र प्रद तथा धन धान्य की बृद्धि करने वाली होती है ,वायव्य में ऊँची भूमि धनदायक है ,उत्तर में ऊँची भूमि पुत्र और धन का नाश करने वाली होती है , ईशान में ऊँची भूमि महा क्लेश कारक है।

नियम 2 . पूर्व में नीची भूमि पुत्र दायक तथा धन की वृद्धि करने वाली होती है , आग्नेय में नीची भूमि धन का नाश करने वाली , मृत्यु तथा शोक देनेवाली और अग्निभय करने वाली होती है।

दक्षिण में नीची भूमि मृत्यु दायक ,रोगदायक , पुत्र- पौत्रविनाशक , क्षयकारक और अनेक दोष करने वाली होती है।

नैऋत्य में नीची भूमि धन की हानि करने वाली , महान भय दायक , रोग दायक और चोर भय करने वाली होती है।

पश्चिम में नीची भूमि धन नाशक , धान्य नाशक ,कृति नाशक ,शोकदायक पुत्र क्षय कारक तथा कलह कारक होती है। वायव्य में नीची भूमि परदेश वास कराने वाली ,उद्वेग कारक , मृत्यु दायक कलह कारक ,रोगदायक तथा धान्य नाशक है। उत्तर में नीची भूमि धन –धान्यप्रद और वंश वृद्धि करने वाली अर्थात् पुत्रदायक है।

ईशान में नीची भूमि विद्या देने वाली ,धनदायक , रत्न संचय करने वाली और सुखदायक होती है। मध्य में नीची भूमि रोग प्रद तथा सर्वनाश करने वाली होती है।

नियम 3 . पूर्व आग्नेय के मध्य ऊँची और पश्चिम , वायव्य के मध्य में नीची भूमि पितामह वास्तु कहलाती हैं।

यह सुख देने वाली हैं। दक्षिण व आग्नेय के मध्य ऊँची और उत्तर और वायव्य के मध्य नीची भूमि सुपथ वास्तु कहलाती हैं यह सब कार्यो में शुभ हैं । उत्तर व ईशान के मध्य नीची और नैऋत्य व दक्षिण के मध्य ऊँची भूमि ' दीर्घायु वास्तु ' कहलाती हैं। यह कुल की वृद्धि करने वाली हैं। पूर्व व ईशान में नीची और पश्चिम व नैऋत्य में ऊँची भूमि 'पुण्यक वास्तु ' कहलाती हैं। यह द्विजो के लिए शुभ है।

पूर्व व आग्नेय के मध्य नीची और वायव्य व पश्चिम के मध्य ऊँची भूमि 'अपथ वास्तु' कहलाती हैं। यह वैर तथा कलह करने वाली है।

दक्षिण व आग्नेय के मध्य नीची और उत्तर व वायव्य के मध्य ऊँची भूमि 'रोगकर वास्तु' कहलाती हैं। यह रोग पैदा करने वाली हैं।

दक्षिण व नैऋत्य के मध्य नीची और उत्तर व ईशान के मध्य ऊँची भूमि 'अर्गल वास्तु ' कहलाती हैं। यह पापों का नाश करने वाली हैं

पूर्व व ईशान के मध्य ऊँची और पश्चिम व नैऋत्य के मध्य नीची भूमि 'श्मशान वास्तु' कहलाती हैं। यह कुल का नाश करने वाली हैं।

आग्नेय में नीची और नैऋत्य , ईशान तथा वायव्य में ऊँची भूमि 'शोक वास्तु' कहलाती हैं। यह मृत्यु कारक हैं।

ईशान, आग्नेय व पश्चिम में ऊँची और नैऋत्य में नीची भूमि 'श्वमुख वास्तु' कहलाती हैं। यह दरिद्र करने वाली हैं।

नैऋत्य,आग्नेय व ईशान में ऊँची तथा पूर्व व वायव्य में नीची भूमि 'ब्रह्मघ्न वास्तु' कहलाती हैं । यह निवास करने योग्य नही हैं।

आग्नेय में ऊँची और नैऋत्य,ईशान तथा वायव्य में नीची भूमि 'स्थावर वास्तु' कहलाती हैं। यह शुभ है।

नैऋत्य में ऊँची और आग्नेय, वायव्य व ईशान में नीची भूमि 'स्थण्डिल वास्तु' कहलाती हैं। यह शुभ हैं।

ईशान में ऊँची और वायव्य,आग्नेय व नैऋत्य में नीची भूमि 'शाण्डुल वास्तु' कहलाती हैं। यह अशुभ हैं।

नियम 4 . दक्षिण , पश्चिम, नैऋत्य और वायव्य की ओर ऊँची भूमि 'गजपृष्ठ भूमि' कहलाती हैं। यह धन,आयु और वंश की वृद्धि करने वाली हैं।

मध्य में ऊँची तथा चारों ओर नीची भूमि 'कूर्मपृष्ठ भूमि' कहलाती हैं। यह उत्साह, धन –धान्य तथा सुख देने वाली हैं।

पूर्व, आग्नेय तथा ईशान में ऊँची और पश्चिम में नीची भूमि 'दैत्यपृष्ठ भूमि' कहलाती हैं, यह धन , पुत्र, पशु आदि की हानि करने वाली तथा प्रेत-उपद्रव करने वाली हैं।

पूर्व –पश्चिम की ओर लम्बी तथा उत्तर –दक्षिण में ऊँची भूमि नाग पृष्ठ भूमि कहलाती है। यह उच्चाटन , मृत्युभय ,स्त्री पुत्र आदि की हानि , शत्रु बृद्धि , मानहानि तथा धन हानि प्रदान करने वाली होती है।

इस प्रकार निवास योग्य भूमि इत्यादि का विचार करके गृह निर्माण इत्यादि का कार्य आरम्भ करवाना चाहिए।

1.2.2 वास्तुपुरुष की उत्पत्ति

भगवान शंकर ने जिस समय अन्धकासुर का वध किया उस समय उनके ललाट से पृथिवी पर पसीने की बूंदें गिरी। उसने एक विकराल मुखवाला प्राणी उत्पन्न हुआ। उस प्राणी ने पृथ्वी पर गिरे हुए अन्धकों के रक्त का पान कर लिया। फिर भी जब वह तृप्त नहीं हुआ , तब वह भगवान शंकर के सम्मुख घोर तपस्या करने लगा।उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने उससे कहा कि तुम्हारी जो कामना हो , वह वर मांग लो। उसने वर माँगा कि मैं तीनों लोकों को ग्रसने में समर्थ होना चाहता हूँ। वर प्राप्त करने के बाद वह अपने विशाल शरीर से तीनों लोकों को अवरुद्ध करता हुआ पृथ्वी पर आ गिरा। तब भयभीत देवताओं ने उसको अधोमुख करके वहीं स्तम्भित कर दिया। जिस देवताओं ने उसको जहाँ दबा रखा था , वह देवता उसके उसी अंग पर निवास करने लगे। सभी देवतओं के निवास करने के कारण वह “वास्तु “ नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार उस दबे हुए प्राणी ने देवतओं से निवेदन किया कि हे देवगण आप लोग मुझ पर प्रसन्न हो , आप लोगों के द्वारा मैं दबकर निश्छल हो गया हूँ तथा इस तरह दब कर मैं कबतक नीचे मुख कर के रहूँगा इस प्रकार उस वास्तु पुरुष के निवेदन से देवगण प्रसन्न हुए तथा ब्रम्हा आदि देवतओं ने कहा कि आज से वास्तु शांति के लिए जो भी यज्ञ होगा वह तुम्हारा आहार होगा इस प्रकार घर में वास्तु पूजन किया जाता है जिससे की वास्तु देव प्रसन्न होते हैं।

वास्तुशाश्त्र के उपदेशक – 1- भृगु , 2 –अत्रि , 3 –वशिष्ठ , 4 – विश्वकर्मा ,5 –मय ,6 –नारद, 7 –नग्नजित , 8 – भगवान शंकर ,9 – इन्द्र ,10 –ब्रह्मदेव , 11 – कुमार , 12 – नन्दीश्वर , 13 –शौनक,14 –गर्ग ,15 – भगवान वासुदेव 16 – अनिरुद्ध . 17 – शुक्र , 18 – बृहस्पति ये अठारह वास्तुशाश्त्र के उपदेशक माने गये हैं। यथा –

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदो नग्नजीच्येव विशालाक्ष: पुरन्दर:।
ब्रह्मा कुमारो नन्दीश: शौनको गर्ग एव च।
वसुदेवोऽनिरुधश्च तथा शुक्र बृहस्पति ।
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशाश्त्रोपदेशका॥ (मत्स्य पुराण 252। 2 – 4)

जब मनुष्य अपने निवास के लिए ईंट – पत्थर आदि से गृह का निर्माण करता है , तब उस गृह में वास्तुशास्त्र के नियम लागू हो जाते हैं।वास्तुशाश्त्र के नियम ईंट- पत्थर आदि दीवार के अन्दर ही लागू होते हैं। तारबंदी आदि के भीतर , जिसमें से वायु आर –पार होती हों , वास्तुशाश्त्र के नियम उसमें लागु नहीं होते हैं।

वास्तुशास्त्र में दिशाओं का बहुत महत्व है। सूर्य के उत्तरायण या दक्षिणायन में जाने पर उत्तर और दक्षिण तो वही रहते है , पूर्व और पश्चिम में अन्तर पड़ जाता है।इस लिए ठीक दिशा का

ज्ञान करने के लिए दिग्दर्शक यन्त्र (कम्पास) की आवश्कता लेनी चाहिए इस यन्त्र में 360 डिग्री रहती है। अत : दिशा का सही ज्ञान करने के लिए डिग्री को देखना आवश्यक है।

दिशाओं की स्थिति इस प्रकार है

ईशान ne	पूर्व east	आग्नेय se
उत्तर north	केन्द्र centre	दक्षिण south
वायव्य nw	पश्चिम west	नैऋत्य sw

॥ दिशाओं के देवता ॥

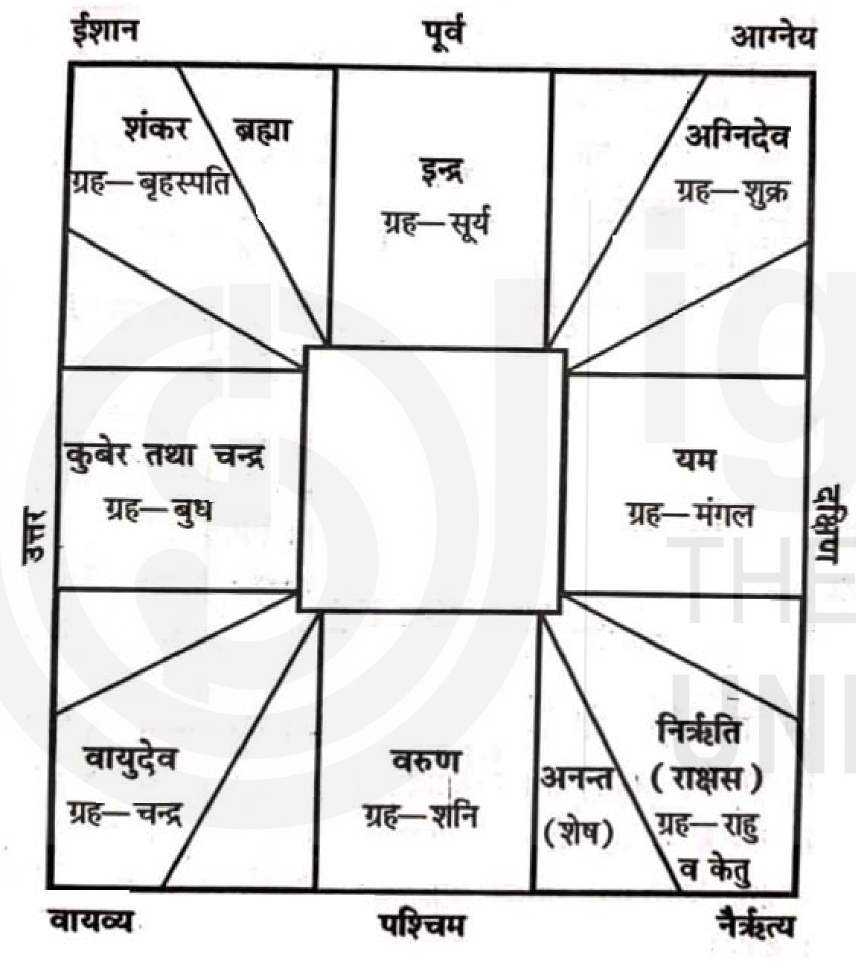

अमरकोष के अनुसार – "गृहरचनावच्छिन्न भूमे " अर्थात् गृह रचना के योग्य अविछिन्न भूमि को ही वास्तु कहा जाता हैं। वास्तु वह स्थान कहलाता है , जिसपर कोई इमारत खड़ी हो , अथवा घर बनाने योग्य भूमि को वास्तु कहते है।घर के लिए ऋग्वेद काल से ही वास्तु शब्द का प्रयोग किया गया है। वास्तुशास्त्र- स्थापत्य-शास्त्र , भवन निर्माण कला का प्रतिपादक समझा जाता है। दुनिया की अन्य सभ्यताओं के माध्यम से ये पता चलता है कि भवन निर्माण या नगर रचना एक प्रकार का सांसारिक कृत्य है , वहीं भरतीय संस्कृति , भवन निर्माण को एक धर्मिक कृत्य मानती है।

वास्तुशास्त्र और शिल्प विद्या पहले से ही चला आ रहा है फिर भी ऋग्वेद काल से इसका प्रचलन अधिकाधिक रूप में प्राप्त होता है , चूँकि हजारों वर्ष पहले भारत में खगोल एवं ज्योतिष शास्त्र की परम्परा चली आ रही है , आदि काल से ही ऋषि –मुनियों ने इस विषय पर विशेष चिन्तन करके ज्योतिष शास्त्र को विभिन्न भागों में विभाजित किया है जिसमें वास्तुशास्त्र का भी स्थान है। भवन निर्माण के संदर्भ में ऋग्वेद में वर्णित मण्डप , वेदी, हवन कुण्ड इत्यादि विषयों के बारे में चर्चा प्राप्त होती है जिससे स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद काल में भी वास्तुशास्त्र अपना स्थान अवश्य प्राप्त कर चुका था। ईशापूर्व एक सौ पचास ईस्वी के लगभग हडप्पा एवं मोहन जोदड़ो के नगरों की खोज से नगरों के जो अवशेष मिले उनसे भी पता चलता है कि उस समय भी उत्कृष्ट भवन निर्माण की प्रक्रिया थी , ठीक वहीं पर कनिष्क कालीन बौद्धस्तुप भी पाया गया। वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण में अयोध्या के बारे में प्राप्त जानकारी से हम सभी को वास्तुशास्त्र के उत्पत्ति के बारे में निर्देश प्राप्त होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार वास्तुशास्त्र का संकेत मिलता है "शिल्प" शब्द की प्राप्ति एवं उसका प्रयोग प्रस्तर कला , मूर्ति कला , तथा संगीत कला में किया गया है। वास्तुशास्त्र के प्रारम्भिक स्वरूप का विकास सूत्र कअल से ही प्रारम्भ होती है ,इस काल में भारतीय वास्तुशास्त्र का स्वरूप प्राय: स्थिर हो चुका था। गृह्य सूत्रों को देखने से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि वास्तु –कर्म , वास्तु मंगल , वास्तु होम , वास्तु परीक्षा , भूमि चयन (रूप , रस ,गन्ध , स्पर्स भेद) से द्वार एवं स्तम्भ –नियम ,वृक्षारोपण , पद-विन्यास वास्तुशास्त्र तथा ज्योतिष , वस्तुफल इत्यादि वास्तु विद्या के सिद्धान्त , अश्वलायन , गोभिल , शखायन ,पारस्कर तथा हिरण्याक्ष के गृह्य सूत्रों में पद –पद पर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। चूँकि पूर्व कालीन वास्तुशास्त्र को दो कालों में विभाजित कर सकते है , पहली से छठी शताब्दी और सातवीं से दसवीं शताब्दी , प्रथम काल में प्राप्त वास्तु ग्रंथो में बृहत्संहिता , मत्स्य पुराण और विस्वकर्म –प्रकाश आदि ग्रन्थों में वास्तुशास्त्र का वर्णन पाप्त होता है , इसमें भी विशेष रूप से विश्वकर्मा –प्रकाश ही एक मात्र ऐसा ग्रन्थ है जिसमें केवल वास्तुशास्त्र वर्णित है। तथा बृहत्संहिता ज्योतिष का ग्रन्थ है , जिसमें ५३ अध्याय में वास्तु विषय से सम्बन्धित , वास्तु चयन , भूमि परीक्षा ,वृक्षा रोपण , पद विन्यास आदि पर विवेचन मिलता है अत: उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहना अतिष्योक्ति नहीं होगी की वास्तुशास्त्र की उत्पत्ति प्राचीन कल में ही हो गयी थी। (वास्तु विद्या पृष्ठ संख्या २५)

1.2.3 वास्तुपुरुष का स्वरूप

वास्तु पुरुष ईशान में शिर किये हुए अधोमुख होकर स्थित हैं तथा इनके शिर में (शिखी)का निवास है। बायें नेत्र में (दिति) तथा दाहिने नेत्र में (पर्जन्य) है , मुख में (आप) , बायें कान में (अदिति) , तथा दाहिने नेत्र में (पर्यन्य) , तथा मुख में (आप) हैं। बायीं कान में (अदिति) , तथा दाहिने कान में जयन्त हैं। बायीं कन्धा में (भुजंग) तथा दाहिने कन्धा में (इन्द्र) है। बायीं भुजा में (सोम,भल्लाट ,मुख्य ,नाग ,और रोग) स्थित है। दायीं भुजा में (सूर्य , सत्य ,भृश, अन्तरिक्ष और अनिल) स्थित हैं। बायीं मणिबन्ध में (पापयक्ष्मा) तथा दायीं मणिबन्ध में (पूषा) हैं। बायाँ हाथ (रूद्र,और राजयक्ष्मा) तथा दाहिनी हाथ में (सावित्री और सविता) हैं। छाती में (आपवत्स)। बायीं स्तन पर (पृथ्वीधर) तथा दायीं स्तन पर (अर्यमा) स्थित हैं। हृदय में (ब्रह्म) एवं पेट में (मित्र और विवश्वान) स्थित हैं। बायीं बगल में (शोष एवं असुर) दायीं बगल में (वितथ और बृहत्क्षत) हैं। बायाँ घुटने से उपर के भाग में (वरुण) तथा दायें में (उरु और यम) स्थित हैं। बायाँ घुटना में (पुष्पदन्त) तथा दायाँ घुटना में (गन्धर्व) हैं।बायीं जन्घा घुटने से नीचे का भाग में (सुग्रीव) तथा दायीं जन्घा में (भृंगराज) स्थित हैं। एवं लिंग में (इन्द्र तथा

जय) स्थित हैं , बायाँ नितम्ब में (द्वौवारिक) तथा दायाँ नितम्ब पर (मृग) हैं एवं पैर में (पिता) स्थित हैं।

1) सिर , मुख , हृदय , दोनों स्तन और लिंग – ये स्थान वास्तु के मर्म स्थान हैं।

2) रोग से अनिल तक , पिता से शिखी तक , विपथ से शोष तक ,मुख्य से भृश तक , जयन्त से भृंगराज तक और अदिति से सुग्रीव तक विस्तृत सूत्रों का जो नव स्थानों में जहाँ स्पर्श होता है वे ही वास्तु के मर्म स्थान हैं।ये नव अन्तिम मर्म स्थान ब्रह्म स्थान के अन्तर्गत हीआते हैं।

3) वास्तु पुरुष के जिस मर्म स्थान (अंग) में कोई शल्य हो अथवा वहां कील ,खम्भा आदि लगाया जाय तो गृह स्वामी के उसी अंग में पीड़ा या रोग उत्पन्न हो जाता है।

4) यदि मर्म स्तन में लकड़ी का शल्य हो तो धन की हानि होगी , हड्डी का शल्य हों तो रोग का भय होगा , लोहे का शल्य हो तो शस्त्र का भय होगा , कपाल या केश हो तो मृत्यु होगी ,कोयला हो तो चोरभय होगा , भस्म हो तो अग्निभय होगा।

5) यदि वास्तु की दायीं भुजा भवन में विस्तृत रूप से न हों तो धन का नाश एवं स्त्री कृत दोष होता है बायीं भुजा भी न हों तो धन –धान्य का नाश होता है। सिर से रहित हों तो धन ,आरोग्यता आदि सब गुणों का नाश होता है। पैर से रहित हो तो स्त्री दोष ,पुत्र नाश एवं दासत्व की स्थिति प्राप्त होती है।

6) घर के मध्य में स्थित ब्रह्म स्थान (ब्रह्म के नव पद) की यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिए। उस जगह कोई निर्माण नहीं करना चाहिए , वहां जुठे वर्तन ,अपवित्र पदार्थ इत्यादि नहीं रखना चाहिए। यदि ब्रह्म स्थान में दीवार , खम्भा , दरवाजा आदि बनाया जाय तो गृह स्वामी के परिवार में तमाम तरह की समस्याएं आती रहती है।

ब्रह्म स्थान निकलने के लिए गृहभूमि की लम्बाई और चौड़ाई के तीन-तीनबराबर-बराबर भाग करने पर बीच वाला भाग ब्रह्म स्थान होगा।

1.3 वास्तु परिचय

वास्तुशास्त्र का उपवेद –स्थापत्य वेद है वास्तुशास्त्र की दो परम्परा रही है , जिसमें उत्तरापथिय के प्रवर्तक विश्वकर्मा तथा दक्षिणापथिय के मय दानव थे। गृह निर्माण सम्बन्धित सभी बातों को जानना सर्वसाधारण को आवश्यक है चूँकि किस स्थान पर घर बनाना चाहिए अर्थात् भूमि शोधन सम्बन्धित सभी बातें, भवन के किस स्थान पर कितने दुरी पर जलाशय इत्यादि रहना चाहिए , गज पृष्ट भूमि , कुर्म पृष्ठ आदि का लक्षण,जो कि पूर्व में बताया गया है पिण्ड निर्माण , ऋषियों के मत से दकार्गल , बृक्ष इत्यादि का रोपण , मंडलेश सिद्धि , पिण्ड इत्यादि का साधन, शिलान्यास इत्यादि का मुहूर्त ,चरणी विचार , देवमन्दिर निर्माण इत्यादि विषय वास्तु परिचय के अन्तर्गत ही आता है।

यह विश्व विदित है कि प्राणी मात्र सुख तथा सुरक्षा की दृष्टि से अपने रहने योग्य भवन का निर्माण करता है उन सबमें बुद्धिमान प्राणी मानव ही है जिसका जीवन वेद शस्त्रों से निर्धारित है। ज्योतिष शास्त्र का अन्यतम अंग वास्तुशास्त्र है जिसका ज्ञान ज्योतिष शास्त्र के अनेक ग्रन्थों में है।

"गृह्यतीति गृहम " जो दूरस्थ प्राणी को अपनी ओर आकृष्ट करे , उसे ही गृह कहते हैं। इसमें भी तृण, मिट्टी ,ईंट, एवं पत्थर द्वारा निर्मित गृह उत्तरोतर क्रम से श्रेष्ठ माने गये है। इस विद्या का संकलन पूर्व काल के हमारे ज्योतिर्विद , ऋषि-महर्षियों ने पल्लवित एवं पुष्पित किया , अत: इनके कुछ –कुछ निर्देश भिन्न –भिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध है , जिनकी मान्यता धर्मप्राण भारत वर्ष में चिरकाल से चली आ रही है। आज हम भारतीय पाश्चात्य भी विज्ञान के अलोक से इतने अधिक प्रभावित हो गये है कि हमको अपने शास्त्र पर तथा अपने पूर्वजों के उपदेश अच्छे नही लग रहें हैं। फलत: हम उनकी उपेक्षा करते जा रहे हैं , फिर भी कतिपय धर्म प्राण लोग आज भी है और रहेंगे , जिनकी आस्था अपने धर्म- ग्रन्थों , विज्ञान तथा पूर्वजों के उपदेशों के प्रति अडिग हैं। उन्हीं के सबल कन्धो पर धर्मपुर को धारण किए हुए हैं ,इस प्रकार की प्राचीन संस्कृति के संरक्षक भी वे ही हैं ।जिनके कारण भारत वसुन्धरा आज भी गौरवान्वित है तथा वास्तु के अवधारणा को भलीभांति जाना जा रहा है। दूसरे शब्दों हम यह कह सकते हैं कि –

वास्तव में दूसरे के घर में निवास करना स्वतन्त्रता एवं स्वाभिमान की दृष्टि से सर्वथा त्याज्य है , चूँकि दूसरे के घर में बिना किराया दिए रहकर जो भी पूजा –पाठ किया जाता है वह सब निष्फल हों जाता है क्यों कि इन सभी क्रियओं का फल भवन के स्वामी को प्राप्त होता है। इस लिए अपने लिए वास्तु के अनुसार घर अवश्य ही बनवाना चाहिए जैसा कि कहा भी गया है -

परगेहकृतास्सर्वा: श्रौतस्मार्तक्रिया: शुभा:।
निष्फला: स्युर्यतस्तासां भुमिश: फलमश्नुते ॥(बृहद्वास्तुमाला श्लोक संख्या 7)

1.3.1 वास्तु भेद

वास्तु के क्षेत्र वर्तमान समय में बहुत ही विस्तृत है फिर भी इसका विभाजन मुख्यतः चार भागों में किया जा सकता है।

1. भूमि इसका अभिप्राय हमको यह समझना चाहिए कि भूमि कैसी है रहने योग्य है या नहीं तथा उपरोक्त विधि के अनुसार परीक्षण करके ही उस पर भवन निर्माण इत्यादि का कार्य करना चाहिए।

2. प्रासाद इसके दो भेद है सर्वप्रथम (देव मन्दिर प्रासाद) जिसमें कि देवता लोग निवास करते है या मन्दिर भी देवताओं के नाम के अनुसार विभिन्न प्रकार के होते है।

   द्वितीय भेद (राजप्रासाद) जिसमें प्राचीन कल में राजा लोग रहते थे तथा अपने प्रजा के लिए भी भवन निर्माण करवाते थे अथवा वर्तमान समय में भी मानव अपना भवन बनाकर रहता है ये सभी वास्तु के भेद या प्रकार के अन्तर्गत ही समझना चाहिए। वैसे तो बृहत्संहिता में 20 प्रकार के प्रसादों का उल्लेख मिलता है ।परन्तु अलग –अलग पुराणों के अनुसार अलग –अलग प्रसादों की कोटि बताया गया है।

3. शयन यहाँ पर आप को शयन का आशय भूमि शयन से समझना चाहिए जिस दिन आप गृहारम्भ कर रहे है उस दिन भूमिशयन नहीं होना चाहिए कलश चक्र भी होना चाहिए।

   द्वितीय आशय मकान में बने हुए शयन कक्ष अथवा वेडरूम से है यह स्थान सुख और शान्ति भरा होना आवश्यक है , कई बार देखा गया है कि शयन कक्ष में अधिकाधिक

सुबिधा होने के कारण भी चैन की नींद नहीं आती है कोई टेन्सन नहीं है फिर भी चैन की नींद नहीं आती है इसका मात्र एक ही कारण है शयन कक्ष सही स्थान पर न होना।

शयन कक्ष मकान के दक्षिण – पश्चिम (नैऋत्य) या उत्तर पश्चिम (वायव्य) की ओर होना चाहिए।

इस प्रकार विचार करके शयन कक्ष का निर्माण करवाना चाहिए

4. यान (वाहन) इस वास्तु भेद के अन्तर्गत शकट यान , उष्ट्र यान , अश्व यान , गज यान, रथ यान , वायुयान इत्यादि भेद प्रमुख है।

वास्तु भेद को इस प्रकार समझना चाहिए जैसे – गृह , विद्यालय , उद्योग कारखाना ,पशुशाला, धान्य गृह , देवालय , बाग , यज्ञशाला , प्रशासन स्थान , कोषागार , यात्रा स्थान , राजभवन , सैन्यबल , मनोरंजन ,बहुद्देशीय , एयर पोर्ट आदि।

1.3.2 गृह प्रयोजन

मुख्य रूप से धर्म , अर्थ , काम को देने वाला साथ ही स्त्री –पुत्र आदि के भोग एवं सुख के लिए तथा प्राणियों के सुख का स्थान भवन ही है क्योंकि सर्दी – वायु – गर्मी आदि कष्टों से रक्षा करता है। विधि के अनुसार भवन निर्माण करने वाले को वापी (बावड़ी) , देवालय आदि के निर्माण का पुण्य भी प्राप्त होता है अत : विश्वकर्मा इत्यादि देव शिल्पकारों ने भी सर्व प्रथम भवन निर्माण का निर्देश किया है

''बृहद्वास्तुमाला'' के अनुसार " पर्णशाला बनाने से कोटि गुण फल प्राप्त होता है , मिट्टी का घर बनाने से दस करोड़ गुना , ईंट का घर बनाने से सौ करोड़ गुना , और पत्थरों द्वारा घर बनाने से अनन्त गुण पुण्य फल की प्राप्ति होती है। बावड़ी, कुवा , प्रासाद (देव अथवा राजमहल) और जो घर का जीर्णोद्वार करते हैं , उनको आठगुना फल प्राप्त होता है। चूँकि वास्तव में दूसरे के घर में निवास करना स्वतन्त्रता एवं स्वाभिमान की दृष्टि से सर्वथा त्याज्य है , भारत में भवन निर्माण एक धार्मिक कृत्य है जिससे पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति होती है।

धर्म - मानव को धर्म का लाभ भी होना चाहिए भवन में निवास करने वाले प्राणी को अध्यात्मिक व आत्मिक सुख मिलना चाहिए क्योंकि भवन आधिभौतिक , आधिदैविक , और आध्यात्मिक त्रिविध तापों से मुक्ति दिलाता है , गृह में निवास करने वाले प्राणी को देखते ही आदमी का सिर श्रद्धा और विश्वास से झुक जाता है। अक्सर आप सुने होंगे कि प्राचीन समय में ऋषि- मुनियों के आश्रम में आते ही हिंसक प्राणी अपना नैसर्गिक वैर भाव भूल जाते थे। बाघ एवम बकरी एक साथ , तथा सर्प और नेवला एक साथ बैठे होते थे , यह वास्तु का धार्मिक प्रयोजन हुआ।

अर्थ – गृह प्रवेश के बाद ही अच्छे वास्तु में धन की बृद्धि होने लगती है चूँकि भवन बनाने के बाद ब्यक्ति कर्ज में दब जाय तो समझना चाहिए कि मकान का वास्तु खराब है।इसके विपरीत भवन स्वामी का पद प्रतिष्ठा में बृद्धि हो तभी भवन निर्माण की सार्थकता है।

काम – स्वय के भवन में पत्नी सुख – शयन सुख प्रयाप्त मात्रा में मिलता है , जिसके फल स्वरूप गृह स्वामी को सुख एश्वर्य एवं सांसारिक सुखों में बृद्धि होती है यह शुभ वास्तु का उद्देश्य है परन्तु अशुभ स्थिति में परिवार में कलह , कोर्ट केस इत्यादि से ब्यक्ति मानसिक तनाव

में हों जाय तो भी समझना चाहिए कि गृह में वास्तु दोष है। इसके अलावा गृह स्वामी की पत्नी एवं सन्तति तथा परिवार के लोग उसके आज्ञा में रहें एवं आदर भी करे तो यही भवन की सार्थकता होगी।

मोक्ष – उसे मोक्ष की प्राप्ति होनी चाहिए अच्छे गृहस्थ की सद्ब्योहर के कारण सद्गति होती है वास्तुशास्त्र इन चरों सिद्धियों को प्राप्त करने में मनुष्य की सहायता करता है। इसलिए इसकी उपयोगिता अपेक्षित है।

चूँकि धार्मिक मान्यताओं के अनुसार भूखण्ड खरीदने से पूर्व वास्तु नियमों के अनुसार भूमि की परीक्षा एवं पूजन जरूर करना चाहिए। भवन बनाने से पूर्व शुभ मुहूर्त में भूमि पूजन नीव पूजन इत्यादि करना चाहिए तथा भवन बन जाने के बाद विधिवत गृह प्रवेस करना चाहिए जिससे की भवन में रहने वाले का सर्वांगीण विकास होता है (विश्वकर्मा प्रकाश के अ . 1 के 17 वें श्लोक के अनुसार) जो लोक नास्तिक प्रवृति के है तथा प्रमाद वस वास्तु शांति नहीं करते उन लोगों का एश्वर्य नष्ट हों जाता है तथा वे अकाल मृत्यु को प्राप्त होते है। तथा उनके प्रत्येक कार्य में रुकावटें आती हैं ,एवं ए लोग वास्तु – पुरुष के प्रकोप से दुर्भाग्य के चक्कर में फंस जाते हैं। तथा पुनः उपाय करने पर उनको लाभ होता है।

1.3.3 परिसरीय वातावरण

परम्परागत विचार के अनुसार भवन के परिसरीय वातावरण की शुद्धि के लिए प्राकृतिक सानिध्य होना आवश्यक है , जलाशय इत्यादि का होना भी आवश्यक है।चूँकि आप इस बात को समझ चुके हैं कि अच्छे भवन में पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति होती है।सभी आश्रमों के उत्पत्ति का कारण भी गृहस्थ आश्रम ही है। परम्परा की मानें तो वेद काल , सनातन , सृष्टि –प्रकृति जन्म इत्यादि का भी पूर्णतया प्रभाव वातावरण की शुध्दि के लिए ही बनाया गया है। संस्कृति एवं संस्कार के प्रभाव से भी वातावरण को शुद्ध किया जा सकता है। वास्तु शास्र के अनुसार घर में पेड़ –पौधे लगाने से सकारात्मक उर्जा का संचार होता है ,वही बिभिन्न पेड़ –पौधों का एक अलग ही महत्व माना जाता है , वास्तु के अनुसार बृक्ष लगाया जाय तो घर में वास्तु दोष दूर होता है , गुणों से भरपूर निम का वृक्ष दूषित वायुमण्डल को शुद्ध कर स्वच्छ पर्यावरण प्रदान करता है। बीमारियों को दूर करने के लिए नीम के पेड़ को वायव्य कोण में लगाना शुभ प्रद होता है। वातावरण शुध्दि के उपाय वेद पुराणों की मानें तो हवन , जप, तप से किया जा सकता है। बल्कि अच्छी सेहत के लिए भी जरूरी है हवन के धुंए से प्राण में संजीवनी शक्ति का संचार होता है। हवन के माध्यम से विमारियों से छुटकारा पाने के सन्दर्भ में ऋग्वेद इत्यादि में पचुर मात्रा में वर्णन किया गया है।

आधुनिक मतों के अनुसार – स्कूल , हास्पिटल ,होटल , स्टेशन ,एयरपोर्ट ,बाजार ,महामार्ग इत्यादि का भी परिसरीय वातावरण शुद्ध हों तो मानव समाज को अधिकाधिक लाभ प्राप्त होता है। स्कूल की बात करें तो विद्यालयीय जीवन का सम्बन्ध विद्यालय के उन सारे वातावरण से जुड़ा हुआ है जिसके अन्तर्गत केवल सुरक्षित एवं स्वच्छ सुबिधाएं ही नहीं अपितु अध्ययन , क्रीड़ा , छात्र अध्यापक सम्बन्ध भी इसमें जुड़ा हुआ है। स्कूली बच्चों के विकाश के लिए और शिक्षा के लिए विद्यालय के वातावरण का एक आवश्यक उपचार आवश्यक है , विद्यालयी वातावरण से तात्पर्य है विद्यालय के कक्षा , कमरे , भवन एवं आस –पड़ोस क्रीड़ा

स्थल , बैठने का प्रबन्ध , वायु एवं प्रकाश ,पेयजल , कार्यक्रम एवं समय सरणी तथा कार्य करने की अनुकूल परिस्थितियों से है।

1.3.4 परम्परागत तथा आधुनिक

वास्तु दो प्रकार होते है , गृह वास्तु और परिसर वास्तु , परिसर के निम्नवत स्थान भारी निर्माण, जल प्रवाह आदि का प्रभाव प्रहरी पर होता है इस लिए वास्तु में प्रहरी की प्रधानता होती है। अत: प्राचीन ऋषियों ने प्रहरी के निर्माण में सावधानी बरतने को कहा है। अब यह पर प्रश्न यह उठता है कि घर का निर्माण पहले करें की प्रहरी का तो वास्तु के अनुसार पता चलता है कि प्रहरी का निर्माण ही पहले करना चाहिए।

हमेशा भोजनालय आग्नेय कोण में होना चाहिए किसी भी स्थिति में इसको ईशान कोण में नहीं बनवाना चाहिए ,यदि आग्नेय कोण में न बन पाए तो वायव्य कोण में बना सकते हैं , वायव्य कोण के रसोई घर में पूरब की ओर मुख करके भोजन बनाना शुभ प्रद माना गया है। यदि वायव्य हिस्से के आग्नेय में भोजन बनाने की सुविधा न हो तो पश्चिम के तरफ मुख करके भोजन बनाने में कोई दोष नहीं है। मूल रूप से भोजनशाला वायव्य कोण में हो तो खर्च अधिक होता है ,नैऋत्य कोण में हो तो स्वास्थ्य सम्बन्धित समस्या होती है ईशान कोण में हो तो घर में निवास करने वाला तथा उस घर का नाश होता है।

शयनागार सामान्यतया घर के नैऋत्य में ही होना वास्तुशास्त्र के अनुसार अच्छा माना गया है इसमें गृहस्थ को ईशान द्वार से बाहर निकलना चाहिए ,फलत : गृहस्थ को उच्च स्थिति प्राप्त होगी , इस कमरे में धन रखने का अलमीरा दक्षिण – पश्चिम दीवारों को लगाकर , उतर एवं पूरब दिशाओं के सामने रखना है चाहिए रक्षण की दृष्टि से भी यह ब्यवस्था अच्छा होगा ब्यक्ति अपने शयनागार में अधिक समय ब्यतित करता है इस लिए शयनागार तो वास्तु के अनुरूप होना चाहिए। घर में नैऋत्य हिस्से में स्टोर रूम बनाकर उसके बगल में पश्चिम या दक्षिण की ओर शयनागार बनाना अच्छा होता है , लेकिन बहुत से लोग इसे पसन्द नही करते , तो भी नैऋत्य में स्टोर रूम बनाने वालो को ध्यान रखना स्टोर रूम की उचाई अन्य कमरों से थोड़ी ऊँची होनी चाहिए शयनागार में पलंग बिछाने के बाद पूरब एवं उतर में ज्यादा खाली जगह छोड़ना चाहिए गृहस्थ घर के नैऋत्य में सोता है तो ईशान अथवा आग्नेय हिस्से में बच्चों के सोने की व्यवस्था करनी चाहिए। कुछ वस्तुशास्त्रियों का मत है कि प्रथम सन्तान दक्षिण के कमरे में , द्वितीय सन्तान आग्नेय में , तृतीय सन्तान पश्चिम में चौथा सन्तान वायब्य कोण में सोये तो अच्छा होगा, सोते समय सिर दक्षिण की ओर करना श्रेष्ठ है। शयनागार दक्षिण , पश्चिम , उतर एवं नैऋत्य में बना सकते हैं। लेकिन पूरब, आग्नेय अथवा ईशान में बनाना उत्तम नहीं होता है।

पुराने समय में स्नान गृह मुख्य घर के बाहर पूर्व आग्नेय अथवा उत्तर वायब्य में बनाये जाते थे ,स्नान गृह ईशान कोण के बजाय कहीं भी वास्तु के नियमों का पालन करते हुए बनाया जा सकता है , लेकिन पानी गरम करने का चूल्हा अन्दर नहीं रखना चाहिए। लेकिन वाटर हीटर रख सकते हैं।

पूजा गृह प्राचीन या अर्वाचीन मत में ईशान कोण में ही बनाये जाते हैं। घरवालों के साथ-साथ पुरोहित को भी बैठने लायक बड़े कमरे पूजा गृह कर लिए बनाये जाते थे , लेकिन आज जगह की कमी के कारण पूजा गृह का दायरा कम हो गया है। ईशान में कुछ भी वजनी चीज नहीं

रखना चाहिए इसके अलावा इस स्थान पर कूड़ादान या गन्दगी नहीं होना चाहिए इस लिए नैऋत्य में पूजा गृह नहीं बनाना चाहिए पूर्वी हिस्से में पूजा गृह बनाने से आरोग्यता तथा सौभाग्य की प्राप्ति होती है , लेकिन भगवान की मूर्ति रखने के लिए कोई प्लेटफार्म नहीं बना सकते इन सभी परिस्थितियों को देखते हुए सर्वोत्तम स्थान ईशान कोण ही पूजन गृह के लिए सर्वोत्तम होगा।

शौचालय और स्नान गृह एक साथ नहीं बनाना चाहिए, यह पद्धति भारतीय परम्परा के अनुकूल नहीं है। अगर दोनों साथ में ही बनाना हो तो बीच में एक दीवार अवश्य खड़ा कर लें, शौचालय भवन के मध्य स्थान, ईशान कोण ,आग्नेय कोण या नैऋत्य की ओर नहीं बनाना चाहिए भवन के मध्य में टायलेट पूर्णत : वर्जित है। यह पूरी ब्यवस्था को छिन्न –भिन्न कर डालता है ,प्रगति अवरुद्ध हों जाती है तथा भवन में निवाश करने वाले लोग बीमारियों के शिकार हो जाते हैं।

शौचालय भवन के दक्षिण पश्चिम में रहने से गृहस्वामी के स्वास्थ्य एवं जीवन के लिए अच्छा नही होता है , ईशान क्षेत्र में बना शौचालय आर्थिक परेशनियाँ एवं मानसिक रूप से रोगी बनाकर रखता है। शौचालय भवन के उत्तरी वायव्य एवं पश्चिमी वावब्य के तरफ बनाना चाहिए ,दूसरी प्रार्थमिकता नैऋत्य एवं दक्षिण के मध्य का क्षेत्र है इस स्थान पर शौचालय बनाया जा सकता है। भवन में शौचालय की सीट पश्चिमी –वायव्य या दक्षिण में रखें यथा सम्भव सीट को उत्तर –दक्षिण शौचालय का प्रयोग करते समय चेहरा उत्तर या दक्षिण होना चाहिए , इसका प्रयोग पश्चिम की तरफ मुख करके भी किया जा सकता है।शौचालय में कमोड का नैऋत्य एवं दक्षिण होना भी उत्तम है कमोड पर बैठते समय चेहरा उत्तर या पूर्व की तरफ रखा जा सकता है। इस तरफ चेहरा कर शौचालय का प्रयोग करने से कब्ज , गैस ,और मस्से की बीमारी नहीं होती है , टायलेट सीट भूमि तल से एक या दो फिट ऊँची होनी चाहिए। क्योंकि शौचालय का भूमितल शेष भूमितल से नीचा रहने पर भवन में निवास करने वाले लोगों को रोगी बनाती है। साथ ही आर्थिक ,शारीरिक , एवं मानसिक स्थिति अच्छी नहीं रहती है टायलेट का दरवाजा पूर्व या उत्तर की ओर रखना चाहिए। साथ ही एक छोटी सी खिड़की पूर्व , पश्चिम या उत्तर में रखनी चाहिए , शौचालय में पानी की टंकी या नल पूर्व ,उत्तर या उत्तर पूर्व के कोने में होना चाहिए। इसे कभी भी दक्षिण पूर्व के कोने में होना चाहिए , इसे कभी भी दक्षिण पूर्व या दक्षिण पश्चिम में नहीं रखना चाहिए। शौचालय की छत एवं जमीन का ढाल एवं आउट लेट पूर्व एवं उत्तर की ओर रखें , दीवार का रंग अपनी पसन्द के अनुसार हल्का रखें। वर्तमान समय में पश्चिमी सभ्यता के साथ –साथ बाथ – टब तथा स्नान करने के लिए फव्वारा आदि संयुक्त रूप से लगे रहते हैं। घर में प्रवेश करते ही सामने शौचालय होने से सेहत खराब रहती है , विशेषतया पेट सम्बन्धित बीमारी होती है। इस स्थिति में शौचालय के मुख्य द्वार पर 4x4 का शीशा लगवाना चाहिए ईशान कोण में शौचालय होने से घर या व्यवसाय की आर्थिक हानि और लोगों में मानसिक असंतुलन , असहनीय बिमारी तथा झगड़े की सम्भावना रहती है , शौचालय की उत्तरी दीवार पर छत एकदम नीचे शीशे की एक फूट चौड़ी पट्टी लगाना लाभदायक रहेगा। शौचालय और स्नानागार संयुक्त हों और रसोई के साथ हों अर्थात् शौचालय या स्नान घर में जाने के लिए रसोई घर से गुजरना पड़ता हो तो इस दोष को दूर करने के लिए शौचालय की चौखट के फर्श पर दहलीज की तरफ 4 इंच चौड़ा पिला पेन्ट कर लें और शौचालय की तरफ वाली दीवार जो रसोई के साथ है , उस पर नकारात्मक उर्जा को रोकने हेतु तीन हरे पीरामिड लगावें। शौचालय के अन्दर sea salt , ceramic

bowl आदि को उत्तर –पूर्व या दक्षिण –पूर्व कोने में रखें यह नकारात्मक उर्जा को रोके रखता है।

1.3.5 विचारणीय बिन्दु

वास्तुशाश्त्र को जानने के लिए निम्नलिखित विचारणीय बिन्दु है आत्मा , जैसे वर्ण , नेत्र रूप रंग इत्यादि , आत्मा का सम्बन्ध हमारे शरीर से है , शरीर का सम्बन्ध उस भूभाग से है जहाँ हम गृह निर्माण करते हैं , गृह का सम्बन्ध उस नगर से है नगर का देश से है , देश का सम्बन्ध उस भूभाग से है अर्थात् पृथिवी से है पृथ्वी का सम्बन्ध उस खगोल सौर मण्डल परिवार से होने के कारण समस्त ज्योतिर्पिण्डों से है। अर्थात् उस ग्रहादि पिण्डों से नक्षत्रों से है यह जो क्रम है की शरीर के अन्दर स्थित आत्मादि से लेकर आकाशस्थ जो ग्रह नक्षत्र है इनके सम्बन्धों से जोड़ने का अर्थात् इनसे उर्जा प्राप्त करने का है यह कार्य वास्तुशास्त्र का है। यदि इन सम्बन्धों के विपरीत कोई कार्य करते हैं तो हमें वाधाएं प्राप्त होती है , यदि इनके अनुकूल रहते है तो हमें शुभ फल प्राप्त होता है तो क्या आज भू परिक्षण करने के विभिन्न प्रकार के यन्त्र उपलब्ध है परन्तु इन सब में महत्वपूर्ण यन्त्र हमारा शरीर है क्योंकि इसमें रूप , रस, गन्ध को जानने के लिए हमारे शरीर में जो यन्त्र है जैसे – आँख , घ्राण , जिह्वा इत्यादि से मिट्टी का स्वाद , जानकर बता सकते हैं परन्तु सर्व प्रथम भूमि का परिक्षण हमारा नेत्र करता इससे देखकर बताया जा सकता है कि यह भूमि कैसी है ।जिह्वा से रसना इत्यादि के बारे में मृदा का स्वाद जाना जा सकता है की इस भूमि की मिट्टी कटु ,कसाय ,तिक्त कौन से स्वाद है। शरीर में तीसरा हमारा यन्त्र है वह है नासिका इससे गन्ध का पता लगाया जा सकता है कि इस मिट्टी में कौन सा गन्ध है ,पाचवां परिक्षण है स्पर्श उस जगह का स्पर्श करके अर्थात् वहां वास करके हम समझ सकते है कि यह स्थान कैसा है जैसे हम कही मन्दिर इत्यादि में जाते है तो वहां का वातावरण बिल्कुल शान्त प्रतीत होता सर्दी , एवं उष्णता का भी ज्ञान स्पर्श से ही होता है यह शरीर पञ्च तत्व से बना है अत : शरीर में सबका सम्बन्ध है , जैसे – पञ्च इन्द्रियों का सम्बन्ध भी व्यक्ति से है जो की रूप,रस ,गन्ध , स्पर्श को जानने में सहयोगी है तथा शरीर का सम्बन्ध पंचतत्व से है जिससे कि यह शरीर बना है अत : हम कह सकते है कि जो हमारे जीवन का आधार है वही वास्तु का भी आधार है।

1.4 सारांश

वास्तुशास्त्र ज्योतिषशास्त्र का एक अभिन्न अंग है , क्योंकि वास्तु में सर्व प्रथम शुभ मुहूर्त देख कर ही हर एक वास्तु का निर्माण प्रारम्भ होता है चूँकि यह कार्य (मुहूर्त) ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ही होता है इस आधार पर हम कह सकते है कि तिथि , वार ,नक्षत्र ,योग , करण का विचार कर ही वास्तु का कार्य आरम्भ करना चाहिए। निवास वास्तु का दिशा आदि ,मुख्य द्वार किस दिशा की ओर होना चाहिए इन सभी विषयों का विचार भवन में ध्यान रखकर करना चाहिए। गृह निर्माण , उच्च प्रासाद , दुर्ग- गांव , नगर , मन्दिर –देवालय ,कूप ,तालाब, वापी , मूर्ति निर्माण स्थापत्य –कला विभिन्न प्रकार के मण्डप ,यज्ञ-शालाएं , सभागृह , शिविका , रथ, विभिन्न प्रकार के यान ,उद्यान , पर्यक , मंच इत्यादि का निर्माण करना , प्रतिष्ठा करना , उनका संशोधन करना अथवा जीर्णोद्वार करना वास्तुशास्त्र का विषय है। विषय वास्तु की दृष्टिकोण से वास्तु –विद्या का भूगोल एवं भूगर्भ विद्या तथा गणित से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भूमि के गन्ध , वर्ण, रस (स्वाद) एवं स्पर्श से प्राचीन स्थापति भौगर्भिक परीक्षा से भवन निर्माण का

स्थान निश्चित करते हैं। इन सभी विषयों को आप इस पाठ के अध्ययन से पूर्णतया बतायेंगे साथ ही मैं आशा करता हूँ कि वास्तु की परिभाषा तथा परिचय के सम्बन्ध समाज को बताकर यश , ख्याति , तथा प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे।

1.5 शब्दावली

शल्य	=	हड्डी
प्रहरी	=	चहर दीवार
परीसरीय	=	परिसर के
आर्थिक	=	धन से सम्बन्धित
शयनागार	=	सोने वाला प्रकोष्ठ
सानिध्य	=	निकट
राजप्रासाद	=	राजा का भवन
सन्तति	=	बाल – बच्चे
पर्णशाला	=	कुटी –घास पुस का बना हुआ
वसुन्धरा	=	पृथ्वी
निश्छल	=	छल से रहित
अवरुद्ध	=	वाधा
गजपृष्ठभूमि	=	दक्षिण ,पश्चिम , नैऋत्य ,और वायब्य की ओर ऊँची।
कूर्मपृष्ठभूमि	=	मध्य में ऊँची चरों तरफ नीची।
स्थापत्य	=	स्थापित करना
शिविका	=	रथ
जीर्णोद्वार	=	नवीनी करण करना
पञ्चइन्द्रिय	=	आँख , कान , नाक , जीभ , त्वचा
पञ्चतत्व	=	पृथ्वी , जल , अग्नि , वायु और शुन्य
चारपुरुषार्थ	=	धर्म , अर्थ ,काम , मोक्ष
दैत्यपृष्ठभूमि	=	पूर्व , अग्निकोण , तथा ईशान में ऊँची एवं पश्चिम में नीची।

1.6 उपयोगी पुस्तकें

1. बृहद्वास्तुमाला (सम्पादक –डॉ ब्रह्मानन्द त्रिपाठी), संस्करण वर्ष २०१६ ई. चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
2. वास्तुसार संग्रह, लेखक –सम्पादक :- आचार्य श्री कमलाकान्त शुक्ल सम्पूर्णा नन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, प्रकाशन वर्ष 2002, विक्रय विभाग वाराणसी।

3. शिल्पदीपक, सम्पादक :- डा. श्री कृष्न जुगनू (चौखम्भा संस्कृत सीरिज आफिस वाराणसी), प्रकाशन वर्ष 2004
4. भवन भास्कर, लेखक :- राजेन्द्र कुमार धवन, प्रकाशन वर्ष :- विक्रम संवत २०५७ श्री कृष्ण जन्माष्टमी, गीताप्रेस गोरखपुर
5. वास्तु विद्या, व्याख्याकार – के. महादेव, प्रकाशन वर्ष १९४०

1.7 बोध प्रश्न

1. वास्तुशास्त्र की परिभाषा लिखिए ।
2. वास्तुशास्त्र की उत्पति के बारे में बताइये ।
3. गृह प्रयोजन की व्याख्या कीजिए ।
4. वास्तु से सम्बन्धित परिसरीय वातावरण कैसा होना चाहिए ?
5. वास्तु के बारे में परम्परागत तथा आधुनिकों के मत प्रदर्शित कीजिए।